International Journal of Information Movement Vol.5 Issue IX (January 2021)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 6-11

संत साहित्य और समाज सुधार

डॉ. ऋषिपाल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी–विभाग, बाबू अनन्त राम जनता महाविद्यालय,
कौल, कैथल (हरियाणा) – 136021
Email: rishipalsuman@gmail.com

वर्तमान बाजारवादी संस्कृति एवं भौतिकता की चकाचौंध ने मानव को विश्वकेन्द्रित कर दिया है। वैश्वीकरण के दौर में वस्तु प्रमुख व सम्बन्ध गौण हो गये हैं। ऐसे वातावरण में प्रत्येक वस्तु, सम्बन्ध व व्यक्ति बिकाऊ है। आधुनिक असंतोष, अविश्वास, निराशा, कुण्ठा एवं तनाव भरे परिवेश में भारतीय संस्कृति, जीवन मूल्यों एवं आदर्शों का तिरस्कार हो रहा है। मानवता पर घोर संकट के बादल मंडराते हुए दिखाई देते हैं। आज का मानव अपने व अपने परिवार के लिए प्रत्येक सुख, सुविधा, साधन, धन–दौलत जुटाने के प्रयासों में भ्रष्ट आचरण एवं आत्महीनता का शिकार होता जा रहा है। वह कम समय में सफलता एवं सम्पन्नता प्राप्त करने के लिए अपराधीकरण के रास्ते को पकड़ लेता है। पारिवारिक परिवेश में स्वार्थपरता के कारण विघटन पैदा हो रहा है। मनुष्य आत्मकेन्द्रित हो गया है। समाज सेवा, नारी का सम्मान, बुजुर्गों की सेवा, भाई–बहनों में स्नेह, माता–पिता का आदर–सम्मान, राष्ट्र के प्रति दायित्व का बोध, सामाजिक दायित्वों के निर्वहन के प्रति जवाबदेही आज के नागरिक में बहुत कम दिखाई देती है। प्रकृति के साथ मानव ने वर्तमान में अनेकों बार जाने–अनजाने में सुमेल समाप्त किया है। रात–दिन पेड़ों को काटा जा रहा है। पानी का अनावश्यक दोहन हो रहा है। ध्वनि प्रदूषण, वायू प्रदूषण दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। ऐसे घोर कलिकाल में मानव का कौन भला कर सकता है। राजनीति के कारण परस्पर मतभेद पैदा हो रहे हैं। युवा बेरोजगार हैं। बच्चे संस्कार विहिन होते जा रहे हैं। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीय जन जीवन पर अपनी छाप छोड़ चुका है। विदेशी संस्कृति का रंग हमारे खान–पान, रहन–सहन, परिधानों आदि पर चढ़ता हुआ साफ दिखाई दे रहा है।

भूमण्डलीकरण के दौर में वर्तमान की विषमताओं, विसंगतियों, विद्रूपताओं, अराजकताओं, समस्याओं और क्लेशों से बचने के लिए हमें केवल संत वाणी ही एक ऐसी सच्ची, सरल, आसान व ग्राह्य जीवन जीने की पद्धति प्रदान कराती है। सन्तों के साहित्यिक उपवन में अनेक मीठे, रसीले, मनमोहक एवं मनोहर फल प्राप्त होते हैं, जिनको प्राणी सेवन मात्र करने से सभी दुःखों, कष्टों, पीड़ाओं, बीमारियों, समस्याओं, अवरोधों, निराशाओं, कुण्ठाओं व क्लेशों से तुरन्त मुक्ति पा सकता है। वर्तमान के अराजकता, भौतिकवाद की अंधीदौड़, ईर्ष्या, द्वैष, वैमनस्य आदि के परिवेश में संतों की वाणी ही केवल ऐसा अचूक मन्त्र है, जो मनुष्य को न केवल तुरन्त आराम दिलाती है, बल्कि आत्मि संतोष, आत्म–पहचान, मान–सम्मान कराने में भी सहायक है। भारतीय संत हमेशा श्रेय मार्ग के पथिक बनकर संसार की चकाचौंध एवं माया के आकर्षण से दूर रहे हैं। वर्तमान के दौर में सन्तों की वाणी ही संजीवनी व संसार के रोगों की रामबाण औषधि है, जिसके सेवन मात्र से ही जीवन का कल्याण हो जाता है। इसलिए आज

सन्तों की वाणी जनमानस का कण्ठहार बनकर लोगों की जुबान पर चढ़ी हुई है। सदियों से सन्तों की वाणी ने व्यक्ति व समाज को अनेकों बार दुःख, संकटों, विपदाओं से बचाकर उसको धैर्य, संतोष, सफलता, संयम, अनुशासन और शान्ति प्रदान की है। सन्तों की वाणी किसी व्यक्ति, समाज, देश, जाति, वर्ग, क्षेत्र, काल के लिए नहीं अपितु सनातन एवं सार्वभौम वाणी है तथा गंगा के जल की तरह पवित्र, निर्मल एवं स्वच्छ है। सन्त कहते हैं कि –

'गुरु बिना ज्ञान नही' बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं।'

हमारे देश एवं समाज में साधु–सन्तों, ऋषि–मुनियों, नाथों, सूफियों की परम्परा युगों–युगों से चली आ रही है। फिर वे सन्त चाहे निर्गुण ईश्वर को मानने वाले – कबीर, रैदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, गरीबदास, नितानन्द, सदना, चरणदास, दरिया साहब, नानक, बुल्ला साहब हों या फिर सूफी सन्त – मुल्ला दाऊद, कुतुम्बन, मंझन, जायसी आदि हों, इन सभी सन्त एवं सूफी कवियों ने भारतीय संस्कृति को बचाने के लिए अपनी वाणी को निराकार ईश्वर से जोड़कर अनेक छन्दों, दोहों, साखियों, पदों, महाकाव्यों आदि के माध्यम से अपने साहित्यिक उपवन को फलदार, मनमोहक एवं समृद्ध किया। आदिकाल के सिद्धों, नाथों ने, भक्तिकाल के सन्तों–भक्तों ने तथा आधुनिक काल के कवि और लेखकों तक ने सामाजिक दुःख दर्दों एवं समस्याओं का अपने साहित्य में उल्लेख करते हुए उनका निराकरण या समाधान भी साहित्यिक गलियारे से निकालने व दिखाने का न केवल प्रयास किया बल्कि सफल भी हुए।

भारतीय समाज में वर्तमान परिवेश में अनेक धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाएँ भी समाज के उत्थान एवं भले के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। इन संस्थाओं का प्रमुख कार्य सामाजिक जीवन में समरसता, एकरूपता लाना व जनता को प्रोत्साहन देना होता है। थॉमस ओडिया लिखते हैं, **''धर्म व्यक्ति का समूह में एकीकरण करता है, अनिश्चितता की स्थिति में उसकी सहायता करता है, सामाजिक लक्ष्यों के प्रति व्यक्ति को जागरूक बनाता है और एक–दूसरे के निकट आने की भावना को प्रोत्साहन देता है।''**[1] अनेकों राजनीतिक संगठनों की भूमिका भी समाज में व्याप्त समस्याओं के समाधान के लिए सराहनीय होती हैं। सीता राम झा के अनुसार, **''सामाजिक क्रियाओं के नियंत्रण और निर्देशन के लिए राज्य का अस्तित्व अनिवार्य समझा गया है।''**[2] महादेव प्रसाद के अनुसार, ''**समाज में विप्लव और उपद्रव को रोकने के लिए इसका जन्म हुआ।''**[3] मानव समाज में रहकर ही अपना जीवन जीता है। किसी भी मानव का हित, कल्याण एवं विकास समाज पर ही निर्भर करता है। ''**व्यक्ति समाज का प्रतिफल है और समाज के प्रत्येक स्थल पर होने वाले नाटक का अभिनेता भी व्यक्ति है।**''[4] **''व्यक्ति समाज में विद्यमान रहता है और उसमें रहते हुए अपने योगक्षेम के लिए सतत प्रयत्नशील है।''**[5] **''समाज को ऐसे सामाजिक सम्बन्धों का जाल कहा गया है, जिसे व्यक्ति की पारस्परिक अन्तःक्रीड़ाओं का प्रतिफलन कहा जा सकता है।''**[6] वस्तुतः साहित्य और समाज एक–दूसरे के पूरक हैं। समाज को साहित्य का और साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। साहित्यकार या कोई भी रचनाकार स्वयं के सभी अनुभवों व भावों को, जिनको वह समाज में रहकर प्राप्त करता है, समाज के विस्तृत जीवन में सन्निविष्ट कर देता है। इस प्रकार के अनुभव व समाज के कल्याण की भावना को लेकर संत कवियों ने साहित्य की रचना की। उन्होंने अपनी वाणी से मानवता का कल्याण किया। संतों ने अपनी वाणी द्वारा समाज को नई

दिशा दी है। डॉ॰ गुलाब राय के शब्दों में, **''समाज कवि एवं लेखकों को बनाता है और लेखक और कवि समाज का निर्माण करते हैं। कवि की बनाई हुई सामाजिक भावों की आदर्श मूर्ति समाज की उन्नायिका बन जाती है।''**[7] डॉ॰ दशरथ ओझा ने साहित्य और समाज को व्याख्यायित करते हुए कहा है, ''**साहित्य की जो शक्ति चिरन्तर सौन्दर्य से हृदय के तारों को स्पर्श करके भावों को स्पन्दित करती है, वही सामाजिक आदर्शों की स्थापना करके सामाजिक जीवन का निर्माण करती है।''**[8] जहां तक राजनीतिक परिस्थितियों के बारे में सोचते हैं तो जिस राज्य या देश की राजनीतिक स्थिति जितनी अव्यवस्थित होगी, उतनी ही तत्कालीन संस्कृति खण्डित होगी। इस सम्बन्ध में डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त का मानना है कि, ''**विभिन्न शासकों में वंश परम्परा एवं वैयक्तिक रुचियों व प्रवृत्तियों की दृष्टि से पारस्परिक अन्तर होते हुए भी भारतीय जनता के लिए वे सभी जाति, धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से विदेशी थे।''**[9]

भारतीय समाज में सन्तों ने अपनी वाणी द्वारा हिन्दू व मुसलमानों के आपसी विरोधों को दूर करने की भरपूर चेष्ठा की। तत्कालीन समाज में मुस्लिम शोषण–नीति के परिणामस्वरूप भारतीय हिन्दू समाज विगलित हो चुका था। श्री रामधारी सिंह दिनकर के मतानुसार, ''**अस्पृश्य जातियां बहुत बड़ी संख्या में ब्राह्मणों की व्यवस्था से पीड़ित होकर इसलिए मुसलमान बन गयीं, क्योंकि वैसा करने से वे स्पृश्यता के सम्बन्ध में हिन्दुओं से बराबरी का दावा कर सकती थीं।''**[10] मध्ययुगीन समाज में शासकों का धार्मिक पक्षपात बढ़ता जा रहा था। ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, **''शासन के रूप में सीजर व पोप दोनों एकत्रित हो गये थे।''**[11] मध्य–युगीन समाज में आर्थिक विषमता के कारण समाज में असन्तोष था। डॉ॰ श्रीवास्तव लिखते हैं, ''**राजकीय वर्ग के लोग इतने सम्पन्न होते थे कि कभी–कभी उनकी शानो–शौकत को देखकर सुलतानों को भी ईर्ष्या होने लगती थी।''**[12]

मध्य–युगीन समय में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक व्यवस्था अस्त–व्यस्त थी। ऐसे समय में सन्तों की वाणी ही भारतीय संस्कृति की वर्तमान परिस्थितियों में जन्मी असन्तोष की लहर का शमन कर सकती थी। तत्कालीन हिन्दु–मुस्लिम के मतभेदों को दूर करने के लिए ही कबीर कहते हैं कि,

'इन दोनों राह न पाई,
हिन्दुअन की हिन्दुआई देखी,
तुरकन की तुरकाई।''

यह उपदेश वर्तमान में भी हिन्दु–मुस्लिम झगड़ों के लिए उतना ही प्रासंगिक है, जितना मध्ययुगीन में था। निश्चित ही मध्ययुगीन ही नहीं आज की भी धन केन्द्रित, बाजारवादी एवं उपभोक्तावादी संस्कृति की निस्सारता को सन्त कुम्भन दास अपने शब्दों में समझाते है –

''सन्तन को सीकरी से काम''

धन, सम्पत्ति को मिट्टी का रूप मानने वाली भारतीय संस्कृति ही आज के दौर में पैदा हुई असमानता, असन्तोष, अलगाववाद व असहयोग की भावना का शमन कर सकती है। सन्त कबीर ने भी धन–दौलत के लालच को तजने के लिए कहा है कि –

''साईं एता दीजिए जामै कुटुम समाई।

मैं भी भूखा न रहूँ, साध भी न भूखा जाए।।''

सन्तों ने हमेशा मनुष्य की इच्छाओं को संयम एवं मर्यादा में बांधने का ही संदेश दिया है। नारी के सम्मान में गुरु नानक देव जी का कथन अनुकरणीय, वंदनीय एवं प्रशंसनीय है –

''तिन क्यूँ मंदा आखिए,

जिन जामिओ राजान।''

सन्तों ने मध्यकालीन समाजिक परिवेश में ईर्ष्या, द्वेष व अहंकार को देखकर मानव को संदेश देते हुए कहा है, जो आज बाजारवादी संस्कृति के दौर में भी उतना ही प्रासंगिक है–

''प्रेम न बाड़ी उपजै, प्रेम न हाट बिकाय,

राजा प्रजा जेहि रुचै, सिर दे के ले जाए।''

कबीर ने अपनी वाणी से एकरूपता, समभाव, सर्वधर्म, शान्ति, एकता, भाईचारा व परस्पर जीवन जीने का संदेश दिया, जो वर्तमान में नितान्त उपयोगी है – **''एके ज्योति से सब उपजा, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।।''** वैश्वीकरण के दौर में आज सनातन मानव मूल्यों का पतन हो रहा है। भारतीय संस्कृति की अवहेलना हो रही है। मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर भ्रष्ट हो गया है। दिन–प्रतिदिन मानवता भयंकर सांस्कृतिक प्रदूषण के गर्त में फंसती नजर आती है। ऐसे घोर कलि–काल एवं विकट समय में सन्त साहित्य मानव–जाति के लिए प्रकाश स्तम्भ बना हुआ है। जाति–पाति का बोलबाला मध्यकाल में भी था, आज भी है। इस संकीर्णता के निराकरण हेतु संत रविदास कहते हैं कि –

''रविदास जन्म के कारनै, होत न कोऊ नीच।

नर को नीच करि डारि है, ओछे करम की सीच।''

वर्तमान समाज में मानवता को बचाने के लिए व उसके भाव–विचार, राग–रस व अस्तित्व में रंग भरने के लिए हमें सन्तो के दिखाए हुए रास्ते पर चलकर पुनः सम्बल प्राप्त करना होगा। क्योंकि सन्त वाणी ने हमेशा आडम्बरों, अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, साम्प्रदायिक झगड़ों आदि की गर्त में पड़ी मानवता को भक्ति–ज्ञान, योग की शिक्षा, सदाचार, उदार प्रेम, प्यार व सद्भाव का रास्ता दिखाकर उत्थान एवं परोपकार का कार्य किया है। सन्तों ने

समाज में सत्य, अहिंसा, करूणा, प्रेम, त्याग आदि जीवन–मूल्यों की स्थापना की, जिसके परिणाम स्वरूप समाज में संकीर्णता व भेदभाव की दूरियाँ कम होती चली गयीं। समाज में सन्तों की वाणी से समता, स्वतन्त्रता, एकता, भाईचारे के प्रसार का पथ प्रशस्त हुआ। उन्होंने हमेशा जीवन में कर्म करो का संदेश दिया है। वर्तमान दौर में जब समस्त विश्व में जाति, वर्ग, समुदाय विशेष के विष से मानवता ग्रस्त है तथा संसार के अनेकों देश युद्ध के मुहावने पर खड़े है, तो ऐसे समय में कबीर की वाणी हमें नया विश्वास देती नजर आती है कि **''साईं के सब जीव''** यह संतों का अमृत नहीं तो फिर क्या है? भारतीय समाज में सचमुच मानवीय

एकीकरण तो सन्तों के अमृतमयी साहित्य में ही मिल सकता है। ''**कबीर काजी को ज्ञान–संदेश सुना रहे हैं कि हे काजी! तुमसे ठीक तरह से बोलते नहीं बनता। तू रोजा रखता है, नमाज पढ़ता है, किन्तु यह समझ ले कि कलमा पढ़ने से ही स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। जो साधना कर सकता है, वह शरीर के भीतर ही सत्तर काबों का दर्शन कर सकता है। तू अपने अल्लाह की पहचान कर तथा हृदय में दया का संचार कर। तू स्वयं ज्ञान प्राप्त कर और दूसरों का भी दें। तभी तुझे स्वर्ग की प्राप्ति होगी।**''[13]

कबीर अपनी वाणी द्वारा संदेश देते हुए कहते हैं कि शाब्दिक तत्त्वों का ज्ञान देने से अच्छा है भगवान की भक्ति करना। शास्त्रों के झमेले वाले शास्त्री कभी ईश्वर के नाम स्मरण करते दिखाई नहीं देते –

''पंडित वेद पुरान पढ़ै, और मौलाना पढ़े कुरानां।

कहै कबीर वे नरक गये, जिन हिरदय राम न जाना।।''[14]

कबीर ने स्पष्ट कहा है कि संसार दशरथ के पुत्र को 'राम' कहता है, लेकिन क्या कोई जानता है 'राम' नाम का मर्म क्या है –

''दशरथ सुत तिहुं लोक बखाना।

राम नाम का मरम है आना।''[15]

कबीर ने राम के अवतार का ही विरोध नहीं किया बल्कि सभी दसों अवतारों का जोरदार खण्डन किया है। वे कहते हैं कि **''यह सब तो ऊपरी व्यवहार है। वस्तुतः जो परब्रह्म समस्त विश्व–ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, वह इन अवतारों से ऊपर है, अगम है, उनकी पहुंच से बाहर है।''**[16] सन्त तुलसी साहब दस अवतार भगवान के नहीं बल्कि काल के मानते हैं, जो संसार को भ्रम में डालते हैं –

''दस अवतार काल के जाना जामें सारा जगत भुलाना।

काल कराल कृष्ण अवतारी, सब जग को धरि खावै।।''[17]

सन्तों ने मूर्ति पूजा का भी विरोध किया है। दादूदयाल मूर्ति पूजा, देवता पूजा व मन्दिर आदि का विरोध करते हैं –

''झूठे देवा, झूठी सेवा, झूठी केर पसारा।

झूठी पूजा, झूठी पाती, झूठा पूजन हारा।''[18]

दादूदयाल कर्मकाण्डों को व्यर्थ मानते हैं –

''सतगुरु माला मन दिया, पवन सूत सूं पोइ।

बिन हाथों निस दिन जपे, परम जाप यूं होय।''[19]

यथा – **''भरम करम जग बंधिया, पण्डित दिया भुलाई।''**[20]

सारांशतः हम कह सकते हैं कि सन्त साहित्य वर्तमान समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं अनियमितताओं, समस्याओं, विकृतियों, रूकावटों व विघटन की स्थिति से बचाने के लिए अत्यन्त प्रासंगिक हैं। आज भी सन्त वाणी कालजयी स्वरूप व प्रासंगिक है। समाज की विकृत स्थितियों में तालमेल बिठाने जैसे – विज्ञान एवं साहित्य, यन्त्र एवं मनुष्य के बीच यथोचित सुमेल कराने में सक्षम हैं। संतों की वाणी न केवल मनुष्य मात्र को बल्कि समाज को भी संयमित एवं अनुशासित जीवन जीने की प्रेरणा देती है। हम कह सकते हैं कि सन्तों की वाणी में अमोघ शक्ति है, जिस कारण से हमारी संस्कृति, सभ्यता व संस्कारों की सुगन्ध भारत देश के प्रांगण को न केवल पल्लवित, आलोकित, सुरभिमय बना रही है, बल्कि संसार के सभी देशों को इसका अनुकरण करने की शिक्षा देते हुए अपनी प्रासंगिकता सिद्ध कर रही है। संतों की वाणी समाज सुधार के लिए सम्पूर्ण रूप से प्रासंगिक है। सन्तों की वाणी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, साहित्य तथा मानवता के उत्थान, उदार, उन्नति, समता, सदभाव आदि के लिए हमेशा विचारणीय, अनुकरणीय, उल्लेखनीय, सराहनीय व आत्मसात करने के योग्य है। अतः हम कह सकते हैं कि सन्त साहित्य समाज सुधार के लिए कल, आज और कल अत्यन्त प्रासंगिक है।

संदर्भ.

1. Thomas Odea, Religion, Page 1-2
2. सीता राम झा, भारतीय समाज का स्वरूप, पृ॰ 95
3. महादेव प्रसाद, समाज दर्शन, पृ॰ 39
4. रामपाल सिंह तोमर, समाज शास्त्र, पृ॰ 579
5. उर्मिल गम्भीर, प्रताप नारायण श्री वास्तव के उपन्यासों का समाज शास्त्रीय अध्ययन, पृ॰ 35
6. राम बिहारी सिंह तोमर, मानव, पृ॰ 48
7. डॉ॰ गुलाब राय, काव्य के रूप, पृ॰ 07
8. डॉ॰ दशरथ ओझा, समीक्षा शास्त्र, पृ॰ 10
9. डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ॰ 128
10. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार आयाम, पृ॰ 275
11. ईश्वरी प्रसाद, मध्ययुग का इतिहास, पृ॰ 506
12. डॉ॰ श्री वास्तव, सल्तनत आफ देहली, पृ॰ 613
13. सं॰ श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, पृ॰ 96
14. सं॰ अयोध्या सिंह उपाध्याय, कबीर रचनावली, पृ॰ 139
15. बीजक, शब्द, 109
16. कबीर ग्रंथावली, तिवारी, रमैनी, पृ॰ 118–19, संस्करण प्रथम
17. घट रामायण, पृ॰ 280
18. दादूदयाल की वाणी, पृ॰ 197
19. दादूदयाल की वाणी, भाग 1,, पृ॰ 157
20. वही, पृ॰ 13